Gurukul International Multidisciplinary Research Journal (GIMRJ)
with International Impact Factor 8.357
Peer Reviewed Journal
https://doi.org/10.69758/GIMRJ/2601S01V14P069

e-ISSN No. 2394-8426
Special Issue on Humanities And
Indian Knowledge System Feb'26
Issue–I(I), Volume–XIV

भारतीय ज्ञान प्रणाली में दलित, आदिवासी और वंचित समुदायों की भूमिका और योगदान

डॉ. रविंद्र सहारे
अनिकेत कॉलेज ऑफ सोशल वर्क, वर्धा

सारांश -
भारतीय ज्ञान परंपरा के उस उपेक्षित पक्ष को मध्यस्थान में लाने का प्रयास करता है, जिसे ऐतिहासिक रूप से शास्त्रीय, अभिजन और लिखित ज्ञान परंपराओं के वर्चस्व के कारण हाशिये पर रखा गया। भारतीय ज्ञान प्रणाली को धर्म और संस्कृतआधारित ग्रंथों तक सीमित कर दिया गया- है, जबकि वास्तविकता यह है कि भारतीय ज्ञान का स्वरूप अत्यंत व्यापक, बहुस्तरीय और बहुसांस्कृतिक रहा है। इस व्यापक ज्ञानपरिसर के निर्माण-, संरक्षण और निरंतर प्रवाह में दलित, आदिवासी और अन्य वंचित समुदायों की भूमिका आधारभूत और निर्णायक रही है।

दलित समुदायोंका योगदान विशेष रूप से श्रमसंस्कृति-, शिल्पकला, कृषितकनीक-, धातुकर्म, निर्माण, स्वच्छता, लोकधर्म और सामाजिक नैतिकता के क्षेत्र में दिखाई देता है। इन समुदायों ने अपने दैनिक जीवन के अनुभवों से ऐसा व्यावहारिक ज्ञान विकसित किया जिसने समाज की आर्थिक और सामाजिक संरचना को स्थायित्व प्रदान किया। यह ज्ञान पुस्तकों में संकलित न होकर कार्य, परंपरा और व्यवहार के माध्यम से पीढ़ीपीढ़ी हस्तांतरित होता रहा-दर-, जिससे भारतीय ज्ञान प्रणाली का व्यवहारिक पक्ष समृद्ध हुआ।

आधारित ज्ञान-आदिवासी समुदायों का योगदान प्रकृति, वन प्रबंधन, जैवविविधता संरक्षण-, औषधीय ज्ञान, पर्यावरणीय संतुलन और सामुदायिक जीवन मूल्यों में अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। आदिवासी ज्ञान परंपरा में मनुष्य और प्रकृति के बीच सहअस्तित्व का दर्शन निहित है-, जो आधुनिक पर्यावरणीय संकटों के समाधान हेतु भी प्रासंगिक है। आदिवासी समाज द्वारा विकसित औषधीय पौधों का ज्ञान, मौसम की समझ, कृषि चक्र और प्राकृतिक संसाधनों के सतत उपयोग की अवधारणाएँ भारतीय ज्ञान प्रणाली को समृद्ध करती हैं।

वंचित समुदायों की मौखिक परंपराएँ- जैसे लोकगीत, लोककथाएँ, मिथक, कहावतें, अनुष्ठान, पर्व और सांस्कृतिक प्रतीक-ज्ञान के ऐसे वैकल्पिक स्रोत हैं, जो जीवन, समाज और संघर्ष के अनुभवों को अभिव्यक्त करते हैं। ये परंपराएँ न केवल सांस्कृतिक स्मृति को संरक्षित करती हैं, बल्कि सामाजिक चेतना, प्रतिरोध और आत्मसम्मान की भावना को भी पोषित करती हैं। मौखिक ज्ञान परंपरा लिखित ग्रंथों के समान ही वैचारिक गहराई और सामाजिक उपयोगिता रखती है, किंतु अकादमिक विमर्श में इसे लंबे समय तक गौण माना गया।

यह शोध भारतीय ज्ञान प्रणाली का पुनर्पाठ सामाजिक न्याय, समावेशन और ज्ञान के लोकतंत्रीकरण के दृष्टिकोण से करता है। अध्ययन यह स्थापित करता है कि दलित, आदिवासी और वंचित समुदाय केवल ज्ञान के उपभोक्ता नहीं रहे, बल्कि वे ज्ञान के सृजनकर्ता, संवाहक और संरक्षक रहे हैं। शोध का निष्कर्ष यह है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली को यदि समग्र और प्रामाणिक रूप में समझना है, तो उसमें इन समुदायों के योगदान को केंद्रीय स्थान देना अनिवार्य है। इससे न केवल ऐतिहासिक अन्याय का बौद्धिक परिमार्जन होगा, बल्कि एक अधिक समावेशी और मानवीय ज्ञानदृष्टि का विकास भी संभव - होगा।

मुख्य शब्द- भारतीय ज्ञान प्रणाली, दलित समुदाय, आदिवासी समुदाय, वंचित वर्ग, लोकज्ञान, मौखिक परंपरा, श्रमसंस्कृति-, प्रकृतिआधारित ज्ञान-, सामाजिक समावेशन, ज्ञान का लोकतंत्रीकरण, सांस्कृतिक स्मृति, सामाजिक न्याय

परिचय -भारतीय ज्ञान प्रणाली)Indian Knowledge System) को प्रायः और संस्कृतआधारित ग्रंथ परंपरा के माध्यम से - परिभाषित किया गया है। औपनिवेशिक तथा उत्तरऔपनिवेशिक अकादमिक विमर्श में भी भारतीय ज्ञान को मुख्यतः - लिखित, अभिजन और संस्थागत ज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया गया, जिसके परिणामस्वरूप दलित, आदिवासी और वंचित समुदायों द्वारा निर्मित एवं संवाहित ज्ञान परंपराएँ हाशिये पर चली गईं। जबकि वस्तुतः भारतीय ज्ञान प्रणाली केवल ग्रंथों का संकलन नहीं, बल्कि एक जीवंत, अनुभवजन्य और लोकाधारित ज्ञान संरचना है, जिसका विकास सहस्राब्दियों से समाज के विभिन्न वर्गों विशेषतः श्रमशील और प्रकृति आधारित समुदायों द्वारा किया गया है। भारतीय ज्ञान प्रणाली को सामान्यतः- धार्मिक ओर सांस्कृतिक परंपरा तक सीमित करके देखा गया है। इस दृष्टि में ज्ञान को लिखित, संस्कृतआधारित और - अभिजन बौद्धिक परंपरा से जोड़ा गया, जिसके कारण समाज के विशाल हिस्से विशेषकर दलित, आदिवासी और वंचित समुदाय-ज्ञान के इतिहास से लगभग अदृश्य कर दिए गए। जबकि भारतीय ज्ञान प्रणाली का वास्तविक स्वरूप बहुआयामी, लोकाधारित और अनुभवजन्य रहा है। इस संदर्भ में हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह कथन अत्यंत महत्वपूर्ण है- "लोक ही वह महासागर है, जिसमें संस्कृति की सभी धाराएँ अंततः मिलती हैं।"[i] इस उद्धरण स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली की जड़ें केवल ग्रंथों में नहीं, बल्कि जनसामान्य के जीवन, श्रम और अनुभवों में निहित हैं। भारतीय समाज की जातिआधारित - -संरचना ने ज्ञान के क्षेत्र में भी असमानता को जन्म दिया। ज्ञान का उत्पादन और उसका आधिकारिक स्वरूप प्रायः सत्ता संपन्न वर्गों तक सीमित रहा। इस बौद्धिक वर्चस्व की आलोचना करते हुए डॉ .**डॉ.** बाबासाहेब अंबेडकर लिखते हैं- "जिस समाज में ज्ञान कुछ वर्गों की बपौती बन जाए, वहाँ समानता केवल एक भ्रम बनकर रह जाती है।" डॉ. बाबासाहेब का यह कथन इस तथ्य को रेखांकित करता है कि ज्ञान और सामाजिक सत्ता के बीच गहरा संबंध रहा है, जिसके कारण दलित और वंचित समुदायों के ज्ञान को हाशिये पर डाल दिया गया। दलित समुदायों का योगदान भारतीय ज्ञान प्रणाली के व्यावहारिक पक्ष में अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। कृषिकार्य-, शिल्प, धातुकर्म, निर्माण, सेवा और श्रम से जुड़ा ज्ञान दलित समाज के दीर्घकालिक अनुभवों से विकसित हुआ। यह ज्ञान शास्त्रों में भले ही दर्ज न हुआ हो, परंतु समाज की जीवनप्रणाली को - संचालित करने में इसकी भूमिका केंद्रीय रही। कंवल भारती इस संदर्भ में लिखते हैं- "दलित समाज का ज्ञान श्रम की कोख

से जन्मा ज्ञान है, जो समाज की वास्तविक बुनियाद को संभाले हुए है।"[ii] यह उद्धरण दलित ज्ञान परंपरा के उस पक्ष को सामने लाता है, जिसे लंबे समय तक 'अज्ञान' कहकर नकारा गया। आदिवासी समुदायों की ज्ञान परंपरा भारतीय ज्ञान प्रणाली का एक अत्यंत समृद्ध और पर्यावरणकेंद्रित आयाम प्रस्तुत करती है। आदिव-ासी समाज का ज्ञान प्रकृति के साथ सहअस्तित्व-, संतुलन और सम्मान पर आधारित है। वन, जल, भूमि, औषधीय पौधों और जैवविविधता से जुड़ा उनका ज्ञान - आज भी वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए महत्वपूर्ण है। इस संदर्भ में वेरियर एल्विन का प्रसिद्ध कथन उल्लेखनीय है- "The tribal world is not backward; it is a different way of understanding life and nature."[iii] इस कथन से स्पष्ट होता है कि आदिवासी ज्ञान को 'पिछड़ा' नहीं, बल्कि वैकल्पिक और समावेशी ज्ञानदृष्टि के रूप में देखा जाना चाहिए। - वंचित समुदायों की मौखिक परंपराएँ- लोकगीत, लोककथाएँ, मिथक, कहावतें और अनुष्ठान भारतीय ज्ञान प्रणाली की सांस्कृतिक स्मृति को संरक्षित करती हैं। ये परंपराएँ संघर्ष, प्रतिरोध और सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति हैं। रामविलास शर्मा के अनुसार- "लोकसाहित्य जनता के जीवनसंघर्ष का बौद्धिक दस्तावेज होता है।-"[iv] यह उद्धरण बताता है कि लोक और मौखिक ज्ञान किसी भी प्रकार से शास्त्रीय ज्ञान से कम नहीं है, बल्कि वह सामाजिक यथार्थ के अधिक निकट होता है। समकालीन संदर्भ में भारतीय ज्ञान प्रणाली को सामाजिक समावेशन और ज्ञान के लोकतंत्रीकरण के दृष्टिकोण से पुनः समझने की आवश्यकता है। इस संदर्भ में सुरेन्द्र मुंशी का कथन उल्लेखनीय है- "ज्ञान की सार्थकता तभी है, जब वह समाज के हाशिये पर खड़े लोगों के अनुभवों को भी स्थान दे।"[v] अतः यह शोध पत्र भारतीय ज्ञान प्रणाली को एक समग्र, बहुस्तरीय और बहुसांस्कृतिक संरचना के रूप में देखने का प्रयास करता है, जिसमें दलित, आदिवासी और वंचित समुदायों की भूमिका को केंद्रीय महत्व दिया गया है। यह अध्ययन न केवल ज्ञान के इतिहास का पुनर्पाठ है, बल्कि सामाजिक न्याय और बौद्धिक समानता की दिशा में एक आवश्यक अकादमिक हस्तक्षेप भी है।

शोध प्रविधिप्रस्तुत शोध पत्र में गुण -ात्मक)Qualitative) एवं विश्लेषणात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य भारतीय ज्ञान प्रणाली में दलित, आदिवासी और वंचित समुदायों की भूमिका एवं योगदान का समावेशी विश्लेषण करना है।

शोध में वर्णनात्मक एवं ऐतिहासिक पद्धति को अपनाते हुएप्राचीन ग्रंथों, लोकसाहित्य, मौखिक परंपराओं, नृवैज्ञानिक अध्ययनों तथा समकालीन सामाजिक–वैचारिक साहित्य का गहन अध्ययन किया गया है। विशेष रूप से दलित विमर्श, आदिवासी अध्ययन और भारतीय ज्ञान प्रणाली से संबंधित पुस्तकों, शोध पत्रों, जर्नल्स एवं रिपोर्ट्स को द्वितीयक स्रोतों के रूप में उपयोग में लिया गया है। अध्ययन के विश्लेषणात्मक ढाँचे में सामाजिक न्याय, समावेशन और ज्ञान के लोकतंत्रीकरण की अवधारणाओं को आधार बनाया गया है। दलित, आदिवासी और वंचित समुदायों के ज्ञान को शास्त्रीय एवं लोकज्ञान के अंतर्संबंध में रखकर तुलनात्मक विवेचन किया गया है।

इस अध्ययन के माध्यम से भारतीय ज्ञान प्रणाली को एक बहुस्तरीय, बहुसांस्कृतिक और लोकाधारित संरचना के रूप में समझने का प्रयास किया गया है, जिससे उपेक्षित समुदायों के ज्ञान और योगदान को अकादमिक मान्यता प्रदान की जा सके।

भारतीय ज्ञान प्रणाली के अध्ययन में यदि केवल शास्त्रीय, लिखित और अभिजन परंपराओं को ही केंद्र में रखा जाए, तो ज्ञान का एक बड़ा सामाजिक आधार स्वतः अदृश्य हो जाता है। इस शोध के विश्लेषणात्मक एवं विवरणात्मक अध्ययन का उद्देश्य भारतीय ज्ञान प्रणाली में दलित, आदिवासी और वंचित समुदायों की भूमिका को ऐतिहासिक, सामाजिक और वैचारिक स्तर पर स्पष्ट करना है। यह अध्ययन इस मूल मान्यता पर आधारित है कि ज्ञान केवल ग्रंथों में संचित नहीं होता, बल्कि श्रम, अनुभव, प्रकृति और सामुदायिक जीवन में भी विकसित होता है।

1. भारतीय ज्ञान प्रणाली का सामाजिक आधारएक विवरणात्मक परिप्रेक्ष्य :- भारतीय ज्ञान प्रणाली को लंबे समय तक वर्णआधारित सामाजिक संरचना के संदर्भ में देखा गया-, जहाँ ज्ञान का औपचारिक स्वरूप उच्च जातियों तक सीमित रहा। परिणामस्वरूप, दलित और वंचित समुदायों द्वारा निर्मित ज्ञान 'लोक', 'परंपरागत' या 'अनौपचारिक' कहकर हाशिये पर रखा गया। हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन इस संदर्भ में अत्यंत सार्थक है- "लोक जीवन से कटकर कोई भी संस्कृति जीवित नहीं रह सकती।"[vi] यह उद्धरण स्पष्ट करता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली की जड़ें लोकजीवन में निहित हैं, जहाँ दलित, आदिवासी और वंचित समुदाय केंद्रीय भूमिका निभाते रहे हैं। उनके दैनिक जीवन के अनुभव खेती, शिल्प, सेवा, उत्सव और संघर्ष ज्ञान के ऐसे रूप हैं, जो समाज की निरंतरता को बनाए रखते हैं।

2. दलित समुदाय और श्रमविश्लेषणात्मक अध्ययन :आधारित ज्ञान-- दलित समुदायों का योगदान भारतीय ज्ञान प्रणाली के व्यावहारिक और तकनीकी पक्ष में अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। कृषि कार्य, निर्माण, धातुकर्म, चमड़ा उद्योग, स्वच्छता और सेवा से जुड़ा ज्ञान दलित समाज के श्रम अनुभवों से विकसित हुआ। यह ज्ञान पुस्तकों में कम और सामाजिक व्यवहार में अधिक संरक्षित रहा। ज्ञान और सामाजिक असमानता के संबंध को रेखांकित करते हुए डॉभीमराव अंबेडकर . लिखते हैं- "ज्ञान का एकाधिकार सामाजिक गुलामी को स्थायी बना देता है।"[vii] इस कथन के आलोक में देखा जाए तो दलित समुदायों के ज्ञान को हाशिये पर रखना केवल सांस्कृतिक नहीं, बल्कि सत्तासंबंधी प्रक्रिया भी रही है। कंवल भारती के - अनुसार- "दलित समाज का ज्ञान जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं से जन्मा ज्ञान है।"[viii] विश्लेषणात्मक रूप से यह स्पष्ट होता है कि दलित ज्ञान परंपरा भारतीय ज्ञान प्रणाली का आधारभूत स्तंभ है, जिसे मान्यता न मिलने के कारण ज्ञान की समग्रता प्रभावित हुई।

3. आदिवासी समुदाय और प्रकृति -आधारित ज्ञान-आदिवासी समुदायों का ज्ञान प्रकृति, पर्यावरण और सहअस्तित्व - की अवधारणा पर आधारित है। वन, जल, भूमि, औषधीय पौधे, मौसम और जैव-दर-विविधता से संबंधित उनका ज्ञान पीढ़ी-

पीढ़ी मौखिक रूप में संचारित होता रहा है। यह ज्ञान आज के पर्यावरणीय संकटों के संदर्भ में भी अत्यंत प्रासंगिक है। इस संदर्भ में वेरियर एल्विन का कथन उल्लेखनीय है- "आदिवासी समाज प्रकृति को जीतने की नहीं, उसके साथ जीने की कला जानता है।"[ix] यह कथन आदिवासी ज्ञान की वैकल्पिक दृष्टि को सामने लाता है, जो आधुनिक विकास मॉडल के लिए एक गंभीर चुनौती भी प्रस्तुत करता है। विश्लेषणात्मक रूप से यह कहा जा सकता है कि आदिवासी ज्ञान भारतीय ज्ञान प्रणाली का पर्यावरणीय और नैतिक आधार है।

4. वंचित समुदायों की मौखिक परंपराएँ -सांस्कृतिक ज्ञान का विश्लेषण :लोकगीत, लोककथाएँ, मिथक, कहावतें और अनुष्ठान वंचित समुदायों की सांस्कृतिक स्मृति को संरक्षित करते हैं। ये परंपराएँ केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, प्रतिरोध और सामूहिक अनुभवों का बौद्धिक दस्तावेज हैं। रामविलास शर्मा का मत है- "लोकसाहित्य जनता के जीवनसंघर्षों की वैचारिक अभिव्यक्ति है।-"[x] यह उद्धरण स्पष्ट करता है कि मौखिक परंपराएँ भारतीय ज्ञान प्रणाली का एक सशक्त वैकल्पिक स्रोत हैं। विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखा जाए तो वंचित समुदायों का लोकज्ञान शास्त्रीय ज्ञान की सीमाओं को विस्तृत करता है।

5. समावेशन और ज्ञान का लोकतंत्रीकरण -समकालीन भारतीय ज्ञान विमर्श में समावेशन और सामाजिक न्याय की अवधारणा पर बल दिया जा रहा है। ज्ञान का लोकतंत्रीकरण तभी संभव है, जब दलित, आदिवासी और वंचित समुदायों के अनुभवों को वैध ज्ञान के रूप में स्वीकार किया जाए। सुरेन्द्र मुंशी के अनुसार- "ज्ञान तभी लोकतांत्रिक हो सकता है, जब वह समाज के सभी वर्गों के अनुभवों को स्थान दे।"[xi] इस विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली को समग्र रूप से समझने के लिए वंचित समुदायों के योगदान को केंद्रीय स्थान देना अनिवार्य है।

उपर्युक्त विवरणात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि दलित, आदिवासी और वंचित समुदाय भारतीय ज्ञान प्रणाली के केवल सहभागी नहीं, बल्कि उसके सृजनकर्ता और संवाहक रहे हैं। उनके बिना भारतीय ज्ञान परंपरा अधूरी और एकांगी प्रतीत होती है। अतः यह अध्ययन भारतीय ज्ञान प्रणाली के पुनर्पाठ का एक प्रयास है, जो सामाजिक न्याय और बौद्धिक समानता की दिशा में एक आवश्यक हस्तक्षेप प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष -प्रस्तुत शोध के समग्र विश्लेषण से यह स्पष्ट रूप से स्थापित होता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली को यदि केवल शास्त्रीय, लिखित और अभिजन परंपराओं तक सीमित करके देखा जाए, तो उसका स्वरूप अपूर्ण, एकांगी और सामाजिक यथार्थ से कटा हुआ प्रतीत होता है। दलित, आदिवासी और वंचित समुदायों की भूमिका और योगदान को केंद्र में रखे बिना भारतीय ज्ञान परंपरा की समग्र समझ संभव नहीं है। यह शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली वस्तुतः एक बहुस्तरीय, लोकाधारित और अनुभवजन्य ज्ञानसंरचना है-, जिसका निर्माण समाज के उन वर्गों ने किया है, जिन्हें ऐतिहासिक रूप से ज्ञानविमर्श के हाशिये पर रखा गया।-

अध्ययन से यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि दलित समुदायों ने श्रम, सेवा, शिल्प, कृषि, तकनीकी कौशल और सामाजिक नैतिकता के माध्यम से भारतीय ज्ञान प्रणाली के व्यावहारिक आधार को सुदृढ़ किया। उनका ज्ञान जीवनोपयोगी, अनुभवजन्य और समाजनिर्माण से जुड़ा हुआ रहा है। यह ज्ञान भले ही ग्रंथों में संकलित न हुआ हो-, परंतु सामाजिक व्यवस्था के संचालन में इसकी भूमिका केंद्रीय रही है। ज्ञान के इस पक्ष की उपेक्षा ने भारतीय ज्ञान परंपरा को लंबे समय तक अभिजनकेंद्रित बनाए रखा।-

इसी प्रकार, आदिवासी समुदायों का योगदान भारतीय ज्ञान प्रणाली के पर्यावरणीय, नैतिक और सहअस्तित्ववा-दी आयाम को रेखांकित करता है। प्रकृति के साथ संतुलन, जैवविविधता का संरक्षण-, औषधीय ज्ञान और सामुदायिक जीवन मूल्य आदिवासी ज्ञान परंपरा की विशिष्ट विशेषताएँ हैं। यह शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि वर्तमान वैश्विक पर्यावरणीय संकटों के संदर्भ में आदिवासी ज्ञान न केवल प्रासंगिक है, बल्कि वैकल्पिक विकास दृष्टि भी प्रस्तुत करता है। अतः भारतीय ज्ञान प्रणाली का पुनर्निर्माण आदिवासी ज्ञान को शामिल किए बिना अधूरा रहेगा।

वंचित समुदायों की मौखिक परंपराएँ लोकगीत, लोककथाएँ, मिथक, अनुष्ठान और सांस्कृतिक प्रतीक इस अध्ययन में ज्ञान के वैकल्पिक, किंतु अत्यंत सशक्त स्रोत के रूप में उभरती हैं। ये परंपराएँ केवल सांस्कृतिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, प्रतिरोध और सामूहिक स्मृति की वाहक हैं। शोध यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि मौखिक ज्ञान को 'अलिखित' या 'अनौपचारिक' कहकर कमतर आँकना भारतीय ज्ञान प्रणाली की वैचारिक सीमा को दर्शाता है।

इस अध्ययन का एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह भी है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली में ज्ञान और सत्ता के बीच ऐतिहासिक संबंध रहा है। ज्ञान का संस्थानीकरण और वैधता प्रायः उन्हीं वर्गों को मिली, जिनके पास सामाजिक वर्चस्व था। इस संदर्भ में डॉभीमराव अंबेडकर की यह धारणा विशेष रूप से प्रासंगिक सिद्ध होती है कि सामाजिक समानता के बिना बौद्धिक . समानता संभव नहीं है। अतः दलित, आदिवासी और वंचित समुदायों के ज्ञान को मान्यता देना केवल अकादमिक कार्य नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय की बौद्धिक प्रक्रिया भी है।

समग्र रूप से यह शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली का भविष्य समावेशन, ज्ञान के लोकतंत्रीकरण और बहुसांस्कृतिक दृष्टि पर निर्भर करता है। दलित, आदिवासी और वंचित समुदायों के योगदान को यदि भारतीय ज्ञान विमर्श के केंद्र में स्थान दिया जाए, तो न केवल ज्ञान का इतिहास अधिक प्रामाणिक होगा, बल्कि एक अधिक मानवीय, न्यायपूर्ण और सामाजिक रूप से उत्तरदायी ज्ञानदृष्टि का विकास भी संभव होगा। इस प्रकार-, प्रस्तुत अध्ययन भारतीय ज्ञान प्रणाली के पुनर्पाठ का एक सार्थक प्रयास सिद्ध होता है, जो उपेक्षित समुदायों के ज्ञान को सम्मान, मान्यता और केंद्रीयता प्रदान करने की दिशा में महत्वपूर्ण अकादमिक हस्तक्षेप करता है।

संदर्भ सूची

[i] द्विवेदी, हजारीप्रसाद) .1973 .पृ .राजकमल प्रकाशन :नई दिल्ली .लोक और साहित्य .(61
[ii] भारती, कंवल) .2010 .पृ .वाणी प्रकाशन :नई दिल्ली .दलित विमर्श और हिंदी साहित्य .(55
[iii] एल्विन, वेरियर) .1959 .(The Tribal World of Verrier Elwin. दिल्ली .पृ .ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस :14
[iv] शर्मा, रामविलास) .1986 .पृ .राजकमल प्रकाशन :नई दिल्ली .लोकसंस्कृति और जनसंघर्ष .(72
[v] मुंशी, सुरेन्द्र) .2014 .(Culture and Society in India. नई दिल्ली .पृ .सेज पब्लिकेशंस :94
[vi] द्विवेदी, हजारीप्रसाद) .1973 .पृ .राजकमल प्रकाशन :नई दिल्ली .लोक और साहित्य .(59
[vii] अंबेडकर, डॉ) .भीमराव .1987 .पृ .गवर्नमेंट ऑफ महाराष्ट्र :मुंबई .जाति का विनाश .(41
[viii] भारती, कंवल) .2010 .पृ .वाणी प्रकाशन :नई दिल्ली .दलित विमर्श और हिंदी साहित्य .(57
[ix] एल्विन, वेरियर) .1959 .(The Tribal World of Verrier Elwin. दिल्लीऑक्सफोर्ड यूनिवर्स :िटी प्रेस .पृ .18
[x]शर्मा, रामविलास) .1986 .पृ .राजकमल प्रकाशन :नई दिल्ली .लोकसंस्कृति और जनसंघर्ष .(70